

पंचुगोपाल बरुआ और अन्य।

बनाम

उमेश चंद्र गोस्वामी और अन्य।

12 फ़रवरी 1997

[डॉ.एस. आनंद और एस.बी.मजमुदार, जे.जे.]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908: धारा 100 (1976 में संशोधित)।

“उच्च न्यायालय द्वारा दूसरी अपील में क्षेत्राधिकार -कानून का तात्विक प्रश्न -आवश्यक शर्त है -भूमि स्वामी द्वारा भौतिक कब्जे के इस आधार पर दावा संस्थित किया गया कि उसने अपनी भूमि लाईसेंसधारी को दो वर्ष के लिए इस शर्त के साथ दी कि वह उक्त भूमि पर दो साल के लिए अस्थाई निर्माण कर उसका अनुज्ञेय उपयोगकर्ता रहेगा। दो साल बाद उक्त अस्थाई निर्माण को हटाकर भौतिक कब्जा भू-स्वामी को लौटा देगा। इसमें लाईसेंसधारी असफल रहा-लाईसेंसधारी ने दलील दी कि उसने भूमि पर एक अनुज्ञेय उपयोगकर्ता के रूप में नहीं बल्कि बिक्री के मौखिक समझौते के तहत 'संभावित क्रेता' के रूप में कब्जा लिया है-विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने तथ्य के प्रश्नों पर समवर्ती रूप से निर्णय दिया, न तो विधि का कोई शुद्ध प्रश्न और न ही विधि और तथ्य का कोई मिश्रित उक्त न्यायालयों के समक्ष उठाया गया था-यद्यपि उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी अपील में लाईसेंसधारी के अधिवक्ता ने कमिश्नर

की एक रिपोर्ट के आधार पर यह माना कि लाइसेंसधारी द्वारा उक्त भूमि पर किया गया निर्माण स्थाई प्रकृति का होने के कारण सुखाधिकारी अधिनियम की धारा 60(बी) के तहत अनुज्ञप्ति अप्रतिसंहरणीय हो गई है। अतः लाइसेंसधारी को बेदखल नहीं किया जा सकता था-निर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय किसी नए बिन्दू के आधार पर जिसे अपील के ज्ञापन में विशेष रूप से निर्धारित नहीं किया और ना ही किसी "विधि के ठोस प्रश्न" को उठाए बिना द्वितीय अपील निर्धारित नहीं कर सकता था। अतः उच्च न्यायालय द्वारा किसी नए बिन्दू पर जो कि सुखाधिकारी धारा 60बी के संबंध में द्वितीय अपील में उठाया गया था पर विचार किया जाना न्यायोचित नहीं था।

भारतीय सुखाधिकार अधिनियम,1882 धारा 60(बी)।

असम राज्य में भूमि का लाइसेंसधारी -न्याय, समानता और सद्विवेक के सिद्धांत -1963 में दो साल के लिए दिए गए लाइसेंस के लिए शर्तों की प्रयोज्यता, इस अनुमति के साथ अस्थायी निर्माण करने की अनुमति दी गई। 1963 में दो साल के लिए लाइसेंस में यह शर्त थी कि असथाई निर्माण की अनुमति दी गई इस आधार पर कि लाइसेंस धारा अस्थायी निर्माण हटाकर भौतिक कब्जा भू-स्वामी को दे देगा-लाइसेंस धार असफल रहा। भौतिक कब्जे के लिए दावा संस्थित किया गया जो विचारण न्यायालय द्वारा व प्रथम अपील में डिक्री किया गया और हालांकि, दूसरी

अपील में उच्च न्यायालय ने 1975 में प्रस्तुत अधिवक्ता आयुक्त की रिपोर्ट के आधार पर, विचार करके कि लाइसेंसधारी ने भूमि पर एक स्थायी प्रकृति की संरचना खड़ी कर ली थी और भले ही सुखाधिकार अधिनियम असम राज्य में लागू नहीं था, धारा 60 (बी) न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांतों पर लागू था और इस तरह लाइसेंस अप्रतिसंहरणी हो गया-यह निर्धारित किया गया कि -उच्च न्यायालय ने 1975 में प्रस्तुत एडवोकेट कमिश्नर की रिपोर्ट पर भरोसा करने में गलती की, जबकि निर्मित संरचना को 1963-1965 से संबंधित लाइसेंस अवधि में निर्मित करनी थी -उच्च न्यायालय का धारा 60बी की प्रयोज्यता के संबंध में विचार भी गलत था जबकि यह प्रकट था कि सुखाधिकार अधिनियम असम राज्य में लागू नहीं होता-न्याय, समानता और अच्छे सिद्धान्त के आधार पर राय दिया जाना स्वीकार्य नहीं था जब अनुज्ञापित धारी स्वयं न्यायालय के समक्ष स्वच्छे आर्थों से नहीं आया।

### संविधि

प्रादेशिक क्षेत्र में लागू होना-केंद्रीय अधिनियम राज्य में लागू नहीं होते -निर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय भी इस तरह के अधिनियम को अपनी न्यायिक शक्ति, न्यायिक सक्रियता के माध्यम से लागू नहीं करा सकता।

अपीलकर्ता ने प्रतिवादी को 01.06.1963 से शुरू होने वाली दो साल की अवधि के लिए भूमि के एक भूखंड का अनुमेय उपयोग करने और अपने निवास के उद्देश्य के लिए उस पर एक अस्थायी संरचना बनाने की अनुमति दी थी। अपीलकर्ता और प्रतिवादी के बीच आपस में तय था कि प्रतिवादी दो साल की अवधि समाप्त होने के बाद संरचना को हटा देगा और वाद भूमि का भौतिक कब्जा लौटा देगा। हालाँकि, प्रतिवादी अपीलार्थी को वाद की विषय-वस्तु भूमि का खाली कर कब्जा सौंपने में विफल रहा। इसके बाद अपीलकर्ता ने भौतिक कब्जे और मुआवजे की डिक्री के लिए मुकदमा दायर किया।

प्रतिवादी ने इस आधार पर मुकदमे का विरोध किया कि उसने अपीलकर्ता से अनुज्ञेय उपयोगकर्ता के रूप में वाद भूमि पर कब्जा नहीं लिया था और प्रतिवादी ने खरीद के अनुबंध के तहत वाद की भूमि पर कब्जा लिया था। जबकि यह मुकदमा लंबित था, प्रतिवादी ने भी मुकदमा अपीलकर्ता के विरुद्ध वाद भूमि को बेचने के मौखिक समझौते के विनिर्दिष्ट अनुतोष की डिक्री के लिए मुकदमा दायर कर दिया, इस आधार पर कि वाद भूमि का कब्जा सौंपे जाने के बाद, प्रतिवादी ने संभावित क्रेता के आधार पर उस पर भवन का निर्माण कर लिया। विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय अदालत ने अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमे को डिक्री किया जबकि प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमे को खारिज कर दिया।

इसके बाद प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने दोनों अदालतों के समवर्ती निष्कर्षों को इस आशय से बरकरार रखा कि बिक्री के लिए मौखिक समझौते के अस्तित्व के संबंध में प्रतिवादी द्वारा सामने रखी गई कहानी में कोई सच्चाई नहीं थी। उच्च न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता ने प्रतिवादी को लाइसेंसधारी के रूप में वाद भूमि पर कब्जा दे दिया था। लेकिन उच्च न्यायालय ने एडवोकेट कमिश्नर की रिपोर्ट के आधार पर यह विचार किया कि प्रतिवादी ने वाद भूमि पर एक स्थायी प्रकृति की संरचना खड़ी कर दी थी, भले ही भारतीय सुखाधिकार अधिनियम, 1882 असम राज्य पर लागू नहीं होता था, धारा 60 (बी) का लाभ प्रतिवादी को दिया और लाइसेंस को न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांतों पर अप्रतिसंहरणीय माना और इसलिए, प्रतिवादी को मुकदमे की भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता। अपीलकर्ता द्वारा यह दलील उठाई गई कि उच्च न्यायालय दूसरी अपील में सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 (बी) की प्रयोज्यता से संबंधित नए बिंदु पर विचार नहीं कर सकता, जिसे खारिज कर दिया गया। इसलिए यह अपील हुई।

अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि दूसरी अपील सुनवाई योग्य नहीं थी क्योंकि दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (1976 में संशोधित) की धारा 100 में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न नहीं होता और

सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60(बी) के आधार पर प्रतिवादी को कोई राहत नहीं दी जा सकती थी, क्योंकि वह अधिनियम असम राज्य पर लागू नहीं होता था।

अपील स्वीकार की गई तथा यह:-

अभीनिर्धारित: 1.1. 1976 के संशोधन के बाद सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के तहत दूसरी अपील पर विचार करने का उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल ऐसी अपीलों तक ही सीमित है, जिसमें कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्गस्त हों, जो उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अपील के ज्ञापन में विशेष रूप से उल्लेखित हो। उच्च न्यायालय धारा 100 सी.पी.सी. का प्रावधान (जो 1976 में संशोधित हुआ) यह मानता है कि न्यायालय अपने आदेश में कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न को निर्धारित करने का उल्लेख करेगा, भले ही कानून का ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न पहले उसके द्वारा निर्धारित नहीं किया गया हो। इस प्रकार कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का अस्तित्व सी.पी.सी. की धारा 100 के संशोधित प्रावधानों के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए अनिवार्य है। [22-सी-डी]

1.2. आम तौर पर, एक अपीलकर्ता को द्वितीय अपील में एक नवीन मामला स्थापित करने या एक नया विवाद उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए (क्षेत्राधिकारिता के अतिरिक्त), जो रिकॉर्ड पर दलीलों या सबूतों द्वारा समर्थित नहीं है और जब तक कि अपील में कोई विधि का कोई

सारभूत प्रश्न शामिल न हो, संशोधित प्रावधानों के तहत द्वितीय अपील उच्च न्यायालय में नहीं की जाएगी। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय में अपील के ज्ञापन में कानून का ऐसा कोई प्रश्न तैयार नहीं किया गया था और द्वितीय अपील के ज्ञापन में जिन आधारों पर भरोसा किया गया है, उनमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार नहीं किया गया था। विचारण न्यायालय और निचली अपीलीय न्यायालय दोनों ने विचारण के दौरान पक्षों द्वारा दिए गए अभिवचनों और सबूतों के आधार पर, केवल तथ्यों के आधार पर मामले का फैसला किया था। प्रतिवादी द्वारा विचारण न्यायालय या प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष कानून का कोई शुद्ध प्रश्न या यहां तक कि विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न भी नहीं उठाया गया था। उच्च न्यायालय ने अपील में कानून का कोई भी महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं बनाया और द्वितीय अपील पर कानून के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार नहीं किया, बल्कि इसे ऐसे माना जैसे कि यह अधीनस्थ न्यायालय के फैसले और डिक्री के खिलाफ अधिकार के रूप में पहली अपील थी। इसलिए, उच्च न्यायालय के लिए पूरी तरह से नए बिंदु पर द्वितीय अपील पर विचार करना उचित नहीं था, न तो अधीनस्थ न्यायालय में इस बाबत अभिवचन किया गया न ही दलील दी गई और इस बात को नजरअंदाज करते हुए कि धारा 100 सी.पी.सी. में 1976 में संशोधन हुआ है, इस बात का उल्लेख किए बिना कि विधि के एक महत्वपूर्ण प्रश्न को द्वितीय अपील में हल करने की आवश्यकता है। यह कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय का यह

दृष्टिकोण उचित नहीं था। कानून की अदालतों का यह दायित्व है कि वह विधायिका के स्पष्ट आशय का अनुसरण करें और उसकी अनदेखी करके उसे विफल न करें। [22-ई-एच, 23-ए-सी]

2.1. वादी का मामला विशेष रूप से यह था कि उसने प्रतिवादी को एक लाइसेंसधारी के रूप में मुकदमे की भूमि का अनुमेय उपयोग करने की अनुमति दी थी और 01.06.1963 से शुरू होने वाली दो साल की अवधि के लिए उस पर एक अस्थायी संरचना बनाने की अनुमति दी थी और प्रतिवादी इस पर कार्य कर रहा था, लाइसेंसधारी ने वाद भूमि पर एक अस्थायी संरचना खड़ी कर दी थी और सहमति के विपरीत दो वर्ष की समाप्ति के बाद वाद भूमि का कब्जा वापस देने से इन्कार कर दिया था। वादी की इस याचिका को समग्र रूप से लिया जाना था और इसके एक हिस्से को स्वीकार करके प्रतिवादी को राहत देने के उद्देश्य से इसे अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता था। वादी के मामले में, समग्र रूप से लिया जाए तो, लाइसेंस की अप्रतिसंहरणीयता का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता था। क्योंकि भारत सुखाधिकार अधिनियम, 1882 की धारा 60 (बी) में निहित सिद्धांतों पर राहत देने के लिए एक लाइसेंस तब अप्रतिसंहरणीय हो जाता है, जब निम्नलिखित तीन शर्तें पूरी हों:-

- (1) कि अधिभोगी लाइसेंसधारी होना चाहिए,
- (2) कि उसे लाइसेंस के अनुसार कार्रवाई करनी चाहिए थी,



(3) और स्थायी प्रकृति का कार्य निष्पादित करने और कार्य के निष्पादन के लिए खर्च वहन किया गया हो। [24-डी-जी]

2.2. उच्च न्यायालय ने एडवोकेट कमिश्नर की रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए यह माना कि मुकदमे की संपत्ति पर प्रतिवादी द्वारा किया गया निर्माण स्थायी प्रकृति का था। ऐसा करते हुए उच्च न्यायालय ने न केवल रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सबूतों को नजरअंदाज कर दिया, बल्कि यह भी नजरअंदाज किया कि एडवोकेट कमिश्नर की रिपोर्ट 1975 में प्रस्तुत की गई थी, जबकि निर्माण करने का प्रश्न लाइसेंस अवधि 1.6.1963 से 1.6.1965 के समय से संबंधित था। उच्च न्यायालय यह मानने में गलती कर गया कि लाइसेंसधारी द्वारा स्थायी निर्माण करने के कारण लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है, जबकि यह मामला विचारण न्यायालय में और प्रतिवादी द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय में उठाए गए बचाव से पूरी तरह से असंगत था। इस तरह के तर्क को पहली बार उच्च न्यायालय में दूसरी अपील के चरण में उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी। [24-एच, 25-ए-सी]

शेवेलियर द्वितीय अयप्पन और अन्य. वी. धर्मोदयम कंपनी, त्रिचूर, एआईआर (1966) एससी 1017, का अनुसरण किया गया।

3.1. एक बार जब यह पाया गया कि सुखाधिकार अधिनियम असम राज्य पर लागू नहीं है, तो अधिनियम की धारा 60 (बी) को लागू करने

का सवाल ही नहीं उठता। बेशक, न्याय के सिद्धांत, समानता और सद्विवेक जिस पर सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 (बी) टिकी हुई है, हस्तगत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू हो सकती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सुखाधिकार अधिनियम लागू अस्तित्व में नहीं है, धारा 60 (बी) के प्रावधान सुखाधिकार अधिनियम अभी भी कार्यशील है। चूँकि, विधायिका का इरादा इस अधिनियम को असम राज्य पर लागू करने का नहीं था, उच्च न्यायालय यह कहकर विधायिका के इरादे को विफल नहीं कर सकता था कि वर्तमान मामले के प्रतिवादी को धारा 60(बी) द्वारा संरक्षित किया गया था। किसी अधिनियम के प्रावधानों को, जो विधायिका द्वारा राज्य में लागू नहीं किया गया है, न्यायिक आदेश द्वारा लागू करना स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह उच्च न्यायालय द्वारा कानून बनाने के समान है, यह शक्ति न्यायपालिका में निहित नहीं है। [26-एफ-एच]

3.2. प्रतिवादी को जो राहत न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों के आधार पर दी गई थी वह सिद्धांतों को, सहायता के लिए दबाया गया प्रतीत होता है, जो कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित था, स्वीकार्य नहीं है। समता की अदालत को यह याद रखना चाहिए कि उसे कानूनी धोखाधड़ी को रोकने के लिए ऐसा कार्य करना चाहिए। ईमानदारी और अच्छे विश्वास को बढ़ावा देने के लिए अपनी सीमाओं में रहकर न्याय करने की अपेक्षा की जाती है। समता में राहत चाहने वाले

पक्ष को सद्भाविक रूप से अदालत में आना चाहिए। हस्तगत प्रकरण में, प्रतिवादी ने इस बात से इन्कार किया कि वह अपीलकर्ता का लाइसेंसधारी था और उसे दो साल की अवधि के लिए वाद भूमि पर एक अस्थायी संरचना बनाने के लिए अनुमति दी गई थी। जबकि विवादित भूमि पर संभावित क्रेता के रूप में स्वयं का कब्जा बताते हुए कि उक्त भूमि विक्रय के मौखिक करार के आधार पर संभावित क्रेता के रूप में विवादित भूमि उसके स्वामित्व में आई है। उच्च न्यायालय सहित सभी तीनों न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी द्वारा दायर विनिर्दिष्ट अनुतोष के मुकदमे में प्रतिवादी की दलील झूठी है। निर्णय और डिक्री के विरुद्ध एस.एल.पी. इस न्यायालय द्वारा भी खारिज कर दी गई थी इसलिए कि प्रतिवादी निश्चित रूप से स्वच्छ हाथों से न्यायालय में नहीं आया। इस प्रकार, भले ही यह तर्क के लिए मान लिया जाए कि सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 (बी) के प्रावधानों में अंतर्निहित न्याय, समानता और सद्विवेक के सिद्धांतों को राज्य में किसी दिए गए मामले में आकर्षित किया जा सकता है। असम जहां सुखाधिकार अधिनियम का विस्तार नहीं किया गया था, प्रतिवादी के आचरण ने उसे न्याय, समानता और सद्विवेक के आधार पर किसी भी राहत से वंचित कर दिया। [27-ए-एफ]

जगत सिंह बनाम जिला बोर्ड, एआईआर (1940) लाह 509, को अनुपयुक्त ठहराया गया।

मथुरी बनाम भोला नाथ, एआईआर (1934) सभी 517, संदर्भित

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार- सिविल अपील संख्या 3631/1993

1979 के एस.ए. संख्या 85 में असम उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 12.8.88 से।

विजय हंसारिया, सुनील के. जैन, जतिंदर के. भाटिया, मनीष कुमार अपीलकर्ताओं के लिए जैन हंसारिया एंड कंपनी।

पी.के. उत्तरदाताओं के लिए गोस्वामी, सुश्री विजय लक्ष्मी मेनन

न्यायालय का निर्णय द्वारा: डॉ आनंद, न्यायाधीश

विशेष अनुमति द्वारा यह अपील, द्वितीय अपील संख्या 85/79 में गौहाटी उच्च न्यायालय के दिनांक 12.08.1988 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध है और निम्नलिखित परिस्थितियों में उत्पन्न हुई है:

अपीलकर्ता के पूर्ववर्ती श्री दुर्गा चरण बरुआ ने प्रतिवादी संख्या 1 उमेश चंद्र गोस्वामी को 1.6.63 से शुरू होने वाली दो साल की अवधि के लिए जोरहाट शहर में भूमि के एक भूखंड का अनुमेय उपयोग करने और उस पर अस्थायी संरचना बनाने की अनुमति दी। उनके निवास के प्रयोजन के लिए उक्त अवधि के लिए। उनके बीच यह समझौता हुआ कि प्रतिवादी दो वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद उक्त संरचना को हटा देगा और वाद भूमि पर अपना विशेष कब्जा सौंप देगा। प्रतिवादी द्वारा वाद भूमि का

कब्जा अपीलकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती को सौंपने में विफलता पर, प्रतिवादी को 31 मार्च, 1966 तक कब्जा देने के लिए एक पंजीकृत नोटिस दिया गया था। प्रतिवादी ने कब्जा नहीं दिया और उसके बाद अपीलकर्ता के हित में पूर्ववर्ती ने 1966 में मुंसिफ कोर्ट, जोरहाट में भौतिक कब्जे और मुआवजे की डिक्री के लिए मुकदमा दायर किया। इसे शीर्षक मुकदमा संख्या 65/66 के रूप में दर्ज किया गया था। जांच के बाद, यह पाया गया कि वाद भूमि का मूल्य मुंसिफ अदालत के आर्थिक क्षेत्राधिकार से अधिक था और इसलिए मुकदमा सहायक जिला न्यायाधीश, जोरहाट की अदालत में लाया गया और वहां शीर्षक मुकदमा संख्या 36/67 के रूप में पंजीकृत किया गया। वादी द्वारा अपने वाद में यह अभिवचन किए गए कि उसने प्रतिवादी को 1 जून, 1963 से दो साल की अवधि के लिए अस्थायी संरचना बनाकर वाद भूमि का अनुमेय उपयोग करने की अनुमति दी थी, लेकिन वादी और प्रतिवादी के बीच स्पष्ट समझौते के बावजूद कि प्रतिवादी दो वर्ष की अवधि के अंत में अपनी लागत पर भूमि से अपनी अस्थायी संरचनाओं को हटाकर वाद भूमि को खाली कर देगा और कब्जा वादी को सौंप देगा, वह कब्जा वापस सौंपने में विफल रहा था। प्रतिवादी ने मुकदमे का विरोध किया और लिखित बयान में अन्य बातों के साथ-साथ अनुरोध किया कि प्रतिवादी ने वादी से अनुमेय उपयोगकर्ता के रूप में किसी भी भूमि पर कब्जा प्राप्त नहीं किया है, प्रतिवादी ने खरीद के अनुबंध के तहत भूमि पर कब्जा कर लिया है और कभी भी ऐसा कोई समझौता वादी से नहीं किया

कि वह अपना निर्माण वाद भूमि से हटा लेगा। जबकि अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती द्वारा दायर टाइटल सूट संख्या 36/67 लंबित था। प्रतिवादी ने भी सहायक जिला न्यायाधीश, जोरहाट की अदालत में टाइटल सूट संख्या 23/69 अपीलकर्ता के पूर्ववर्ती के विरुद्ध विक्रय के मौखिक करार के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालना का एक वाद संस्थित किया। प्रतिवादी (यहाँ प्रतिवादी संख्या 1) द्वारा यह दलील दी गई थी कि उसने विवादित भूमि की बिक्री के लिए श्री दुर्गा चरण बरुआ के साथ एक मौखिक समझौता किया था और उपरोक्त समझौते के अनुसरण में उसे उसका कब्जा दे दिया गया था और विक्रेता ने विक्रय मूल्य 7860.00 प्राप्त कर लिया था। यह कि वाद भूमि का कब्जा सौंपे जाने के बाद, संभावित क्रेता के रूप में, उसने वाद भूमि पर एक घर का निर्माण किया था और चूँकि श्री दुर्गा चरण बरुआ विक्रय विलेख निष्पादित करने में विफल रहे थे, इसलिए मौखिक समझौते के विनिर्दिष्ट अनुपालना के लिए एक दावा संस्थित किया गया। श्री बरुआ को मौखिक करार की विनिर्दिष्ट अनुपालना की डिक्री के लिए कि वह विक्रय पत्र वादी के पक्ष में निष्पादित करे, डिक्री चाही गई। दोनों सूट आई.सी. सूट नंबर 36/67 और सूट नंबर 23/69 को एक साथ विचारण किए जाने के लिए जोड़े दिये गये।

मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, श्री दुर्गा चरण बरुआ की मृत्यु हो गई और उनके कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाया गया। विचारण

न्यायालय ने एक समग्र निर्णय और आदेश द्वारा स्वर्गीय श्री दुर्गा चरण बरुआ द्वारा दायर वाद संख्या 36/67 को प्रतिवादी द्वारा वादी को खास कब्जा देने का निर्देश दिया और प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर वाद संख्या 23/69 को खारिज कर दिया, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं था कि प्रतिवादी नंबर 1 ने स्वर्गीय श्री दुर्गा चरण बरुआ के साथ मुकदमे की जमीन खरीदने के लिए कोई समझौता किया था और न ही यह दिखाने के लिए कोई सबूत था कि प्रतिवादी ने दुर्गा चरण बरुआ को 7860 रु. का कोई भुगतान किया था। विचारण न्यायालय ने माना कि मुकदमे की जमीन बेचने के लिए मौखिक समझौते की कहानी मनगढ़ंत थी। विचारण न्यायालय के फैसले और डिक्री से दुखी होकर, प्रतिवादी नंबर 1 ने जिला न्यायाधीश, जोराहाट के समक्ष दो अलग-अलग अपीलें दायर कीं। दिनांक 21.8.78 के निर्णय द्वारा जिला न्यायाधीश ने दोनों अपीलों को खारिज कर दिया और दोनों मामलों में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की। इसके बाद प्रतिवादी नंबर 1 ने उच्च न्यायालय के समक्ष दो द्वितीय अपील दायर की, जो कि एसए नंबर 77/79 थी, जो सूट नंबर 23/69 और एसए नंबर 85/78 जो वाद संख्या 36/67 में निर्णय और डिक्री के विरुद्ध उत्पन्न हुई थी। उच्च न्यायालय ने निर्णय और आदेश दिनांक 4.8.88 के माध्यम से द्वितीय अपील संख्या 77/79 को खारिज कर दिया और दोनों अदालतों के समवर्ती निष्कर्षों के इस आशय को बरकरार रखा कि बेचने के लिए मौखिक

समझौते के अस्तित्व के संबंध में प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा सामने रखी गई कहानी में कोई सच्चाई नहीं थी। बिक्री के मौखिक समझौते के अनुसार वाद भूमि पर कब्जा करने की प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा लगाई गई याचिका खारिज कर दी गई। यह पाया गया कि प्रतिवादी नंबर 1 को वादी द्वारा लाइसेंसधारी के रूप में वाद की भूमि पर कब्जा दिया गया था, जैसा कि वादपत्र में उल्लेखित किया गया था। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने दिनांक 12.8.88 के निर्णय द्वारा वाद संख्या 36/67 से उत्पन्न द्वितीय अपील संख्या 85/79 को स्वीकार किया और उक्त निर्णय द्वारा भारतीय सुखाधिकार अधिनियम 1882 धारा 60 (बी) के प्रावधानों का लाभ न्याय, समानता और सद्विवेक के सिद्धांतों पर दिया जाकर लाइसेंस को अप्रतिसंहरणीय माना। उच्च न्यायालय ने 1975 की स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा किया गया निर्माण स्थायी प्रकृति का था और इसलिए सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 (बी) के तहत उसे सुरक्षा उपलब्ध थी और उसे वाद भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता था। अपीलार्थी ने यह प्रारम्भिक आपत्ति ली कि उत्तरदाता द्वारा सुखाधिकार अधिनियम के प्रावधानों के तहत लाभ प्राप्त किए जाने की बात को द्वितीय अपील में प्रथम बार उठाया है जबकि न तो अभिवचनों में भी इस बात को उठाया है न ही इस संबंध में कोई विवाद्यक कायम हुआ था व ना ही धारा 60बी के फायदे बाबत कोई साक्ष्य विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। यहां तक की



प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष भी ऐसा कोई बचाव नहीं लिया गया था इसलिए उसे द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार इस बचाव को लिए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील को खारिज कर दिया गया और तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को अलग रखते हुए द्वितीय अपील की अनुमति दी गई।

जबकि अपीलकर्ता ने दूसरी अपील संख्या 85/79 (एसएलपी 2567/89 से उत्पन्न) में उच्च न्यायालय के फैसले और आदेश के खिलाफ एसएलपी दायर की, प्रतिवादी नंबर 1 ने दूसरी अपील संख्या 77/79 (एसएलपी 14313/88 से उत्पन्न)। दिनांक 3.8.93 के आदेश के तहत एसएलपी संख्या 2567/89 में विशेष अनुमति दी गई थी लेकिन प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर एसएलपी संख्या 14313/88 को खारिज कर दिया गया था।

अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री हंसारिया ने कहा कि प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर की गई द्वितीय अपील न केवल सुनवाई योग्य थी क्योंकि अपील में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्गस्त नहीं था, बल्कि धारा 60(बी) सुखाधिकार अधिनियम के आधार पर भी प्रतिवादी संख्या 1 को कोई राहत नहीं दी जा सकती थी, क्योंकि वह अधिनियम असम राज्य पर लागू नहीं होता है। हालाँकि, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने

उसी तर्क पर निर्णय का समर्थन किया जो विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिया था।

विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों ने समवर्ती रूप से पाया है कि प्रतिवादी नंबर 1 की दलील कि उसने स्वर्गीय श्री दुर्गा चरण बरुआ के साथ मुकदमे की जमीन खरीदने के लिए एक मौखिक समझौता किया था और श्री बरुआ द्वारा कब्जे में देने के बाद उस पर संभावित क्रेता के रूप में काबिज हो गया था और एक संभावित क्रेता के रूप में उस पर निर्माण कार्य किया था, जबकि ऐसी कोई बात रिकॉर्ड से बाहर नहीं आई और यह कहानी झूठी थी और सत्य पर आधारित नहीं थी। दोनों अदालतों ने समवर्ती रूप से यह भी पाया कि अपीलकर्ता के पूर्ववर्ती हितधारक श्री बरुआ ने प्रतिवादी को दो साल की अवधि के लिए वाद भूमि का अनुमेय उपयोग करने की अनुमति दी थी और उसे उक्त भूमि पर निवास के प्रयोजन के लिए अस्थायी संरचनाएं बनाने की अनुमति दी थी। तथ्य के इन समवर्ती निष्कर्षों के खिलाफ, विद्वान एकल न्यायाधीश ने दो द्वितीय अपीलें स्वीकार की और बाद में तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को अलग करते हुए और एक याचिका के आधार पर सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 (बी) में मांगे गये लाभ को स्वीकार करते हुए एक की अनुमति दी जो कि उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाई गई द्वितीय

अपील में प्रतिवादी नंबर 1 को राहत दी गई और वादी-अपीलकर्ता के तर्कों को अस्वीकार किया गया। जिसे यह न्यायालय बाद में विचार करेंगे।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा सी.पी.सी. की धारा 100 में किये गये परिवर्तन की अनदेखी की जिसमें द्वितीय अपील के दायरे को काफी हद तक सीमित कर दिया है। संशोधन से पहले, द्वितीय अपील धारा 100(1) के खंड (ए) से (सी) में निर्धारित आधारों पर उच्च न्यायालय में की जा सकती थी, अर्थात्

(ए) निर्णय कानून के विपरीत है या कानून की शक्ति वाले किसी उपयोग के विपरीत है:

(बी) निर्णय कानून के कुछ भौतिक मुद्दे या कानून के बल वाले उपयोग को निर्धारित करने में विफल रहा है:

(सी) इस संहिता या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा प्रदान की गई प्रक्रिया में कोई महत्वपूर्ण त्रुटि या दोष, जिसने संभवतः गुण-दोष के आधार पर मामले के निर्णय में त्रुटि या दोष उत्पन्न किया हो।

हालाँकि, 1976 के संशोधन द्वारा, धारा 100 सी.पी.सी. में विधायिका द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तावित किया गया था। संशोधित धारा 100 सी.पी.सी. इस प्रकार है:-

100. (1) इस संहिता के मुख्य भाग में या तत्समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए को छोड़कर, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी भी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री के खिलाफ अपील उच्च न्यायालय में की जाएगी यदि उच्च न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि मामले में कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है।

(2) इस धारा के तहत एकपक्षीय रूप से पारित अपीलीय डिक्री के खिलाफ अपील की जा सकती है।

(3) इस धारा के तहत अपील में, अपील के ज्ञापन में अपील में शामिल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का सटीक उल्लेख किया जाएगा।

(4) जहां उच्च न्यायालय संतुष्ट है कि किसी भी मामले में कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है, वह उस प्रश्न को तैयार करेगा।

(5) इस प्रकार तैयार किए गए प्रश्न पर अपील सुनी जाएगी और अपील की सुनवाई में प्रतिवादी को यह तर्क देने की अनुमति दी जाएगी कि मामले में ऐसा प्रश्न अन्तर्गस्त नहीं है बशर्ते कि इस उप-धारा में कुछ भी नहीं माना जाएगा यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि मामले में ऐसा प्रश्न अन्तर्गस्त है, तो दर्ज किए जाने वाले कारणों से, कानून के किसी अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपील, जो उसके द्वारा तैयार नहीं की गई है, को सुनने की अदालत की शक्ति को हटा या कम कर दिया जाएगा।

धारा 100 सी.पी.सी. में वर्ष 1976 में हुए संशोधन के पश्चात् उच्च न्यायालय को द्वितीय अपील को स्वीकार करने का क्षेत्राधिकार केवल उन्हीं मामलों तक सीमित कर दिया गया जिनमें विधि का सारभूत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, जो विशेष रूप से अपील के ज्ञापन में निर्धारित है और उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किया गया है। निःसंदेह, धारा के प्रावधान से पता चलता है कि विधि के किसी भी अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपील, जो इसके द्वारा तैयार नहीं की गई है, को दर्ज किए जाने वाले कारणों से सुनने की अदालत की शक्ति को छीनने या कम करने वाला कुछ भी नहीं माना जाएगा, यदि अदालत इस बात से संतुष्ट है कि मामले में ऐसा प्रश्न शामिल है। यह धारा प्रावधान करती है कि न्यायालय अपने आदेश में विधि के उस महत्वपूर्ण प्रश्न का संकेत देगा जिसे वह तय करने का प्रस्ताव करता है, भले ही विधि का ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न पहले उसके द्वारा तैयार नहीं किया गया हो। इस प्रकार, विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न का अस्तित्व सी.पी.सी. की धारा 100 के संशोधित प्रावधानों के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए अनिवार्य शर्त है।

आम तौर पर, एक अपीलकर्ता को द्वितीय अपील में एक नया मामला स्थापित करने या एक नया मुद्दा उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए (क्षेत्राधिकार के विषय के अतिरिक्त), जो रिकॉर्ड पर अभिवचनों या सबूतों द्वारा समर्थित नहीं है और जब तक कि अपील में कोई विधि का

कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल न हो, संशोधित प्रावधानों के तहत द्वितीय अपील उच्च न्यायालय में नहीं पोषणीय नहीं होती। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय में अपील के ज्ञापन में विधि का ऐसा कोई प्रश्न तैयार नहीं किया गया था और द्वितीय अपील के ज्ञापन में आधार (6) और (7) जिस पर भरोसा किया गया था, में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार नहीं किया गया था। जैसा कि अपील के तहत निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी अपील में विधि का कोई भी महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं बनाया और द्वितीय अपील में अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अधिकारस्वरूप प्रस्तुत प्रथम अपील की तरह निस्तारित किया। धारा 100 सी.पी.सी. में संशोधन करने में विधायिका के इरादे का इस प्रकार उल्लंघन के समान है। विचारण न्यायालय और निचली अपीलीय अदालत दोनों ने विचारण न्यायालय के समक्ष पक्षों द्वारा की गई अभिवचनों और सबूतों के आधार पर केवल तथ्य के आधार पर मामलों का फैसला किया था। प्रतिवादी द्वारा विचारण न्यायालय या प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष विधि का कोई शुद्ध प्रश्न या विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न भी नहीं उठाया गया था। इसलिए, उच्च न्यायालय के लिए पूरी तरह से नए बिंदु पर द्वितीय अपील पर विचार करना उचित नहीं था जिसे न तो अधीनस्थ न्यायालयों में अभिवचन किया गया था और ना ही ऐसा तर्क दिया गया था और यह सब 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 100 सी.पी.सी. में लाए गए

परिवर्तनों को नजरअंदाज करके किया गया था, यहां तक कि यह भी संकेत नहीं दिया गया कि विधि के एक महत्वपूर्ण प्रश्न को द्वितीय अपील में हल करने की आवश्यकता है। कम से कम कहें तो उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण उचित नहीं था। विधि की अदालतों का यह दायित्व है कि वह विधायिका के स्पष्ट इरादे को आगे बढ़ाएं और उसकी अनदेखी करके उसे विफल न करें।

शेवेलियर॥ अयप्पन और अन्य बनाम धर्मोदयम कंपनी, त्रिचूर, एआईआर (1966) एससी 1017 के मामले में, न्यायाधीश श्री कपूर, ने तीन न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए एक पार्टी के मामले पर विचार किया, जिसने अपीलीय स्तर पर लाइसेंस और उसकी अप्रतिसंहरणीयता की याचिका उठाकर अपना रुख बदलने की कोशिश की थी। एक ऐसी याचिका जो न तो विचारण न्यायालय में उठाई गई थी और न ही किसी भी स्तर पर उस पर फैसला सुनाया गया। यह विचार किया गया।

"इस अदालत में अपीलकर्ता ने मुख्य रूप से इस दलील दी कि उसे एक लाइसेंस दिया गया था और लाइसेंस पर कार्य करते हुए उसने एक स्थायी चरित्र का काम निष्पादित किया था और उसके निष्पादन में खर्च किया था और इसलिए धारा 60 (बी) के तहत भारतीय सुखाधिकार

अधिनियम, 1882 (1882 का 5), जिसे इसके बाद अधिनियम के रूप में कहा जाएगा, जो उस क्षेत्र पर लागू होता था जहां संपत्ति स्थित है और इसलिए लाइसेंस अप्रतिसंहरणीय था। विचारण न्यायालय में लाइसेंस या इसकी अप्रतिसंहरणीयता की कोई दलील नहीं उठाई गई थी लेकिन जो दलील दी गई थी वह प्रदर्श एक्स में वर्णित ट्रस्ट की वैधता की थी। विचारण न्यायालय के फैसले में ऐसे किसी भी सवाल पर विवेचना नहीं की गई थी। उच्च न्यायालय में अपीलकर्ता ने विचारण न्यायालय में प्रासंगिक पैरा 9 से 13 के आधार पर डिक्री के खिलाफ अपील की थी।"

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय ने पाया कि अपीलीय चरण में अपना मामला बदलने के लिए पार्टी स्वतंत्र नहीं थी और चूंकि लाइसेंस या इसकी अप्रतिसंहरणीयता की दलील विचारण न्यायालय के समक्ष नहीं उठाई गई थी, इसलिए ऐसा उच्च न्यायालय में नहीं उठाया जा सकता है और पहली बार अपीलीय चरण में ऐसी याचिका उठाने की अनुमति देने से इन्कार करने वाले उच्च न्यायालय के फैसले को



बरकरार रखा है। यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर स्पष्ट रूप से लागू होता है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस निर्णय पर गौर किया, लेकिन राय दी कि यह निर्णय उच्च न्यायालय में अपीलकर्ता को अधिनियम की धारा 60 (बी) की सुरक्षा के संबंध में बचाव लेने से नहीं रोक सकता है, क्योंकि लाइसेंस देना और संरचना का निर्माण करना अपीलार्थी के स्वयं का मामला है। यह देखने के बाद भी कि अपीलकर्ता ने विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों में विशेष रूप से बचाव किया था कि उसने एक संभावित मालिक के रूप में निर्माण किया था, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि चूंकि दावे में वादी का मामला यह था कि अपीलकर्ता को संरचना को बढ़ाने के लिए एक लाइसेंस दिया गया था, वादी द्वारा उठाए गए अनुरोध पर प्रतिवादी को राहत दी जा सकती थी, प्रतिवादी के रुख को नजरअंदाज करते हुए क्योंकि वादी को अपने स्तर पर ही सफल या असफल होना था, बचाव पक्ष की कमजोरी के कारण नहीं। विधि का सुस्थापित सिद्धान्त है कि वादी अपने मामले के बल पर सफल हो सकता है, न कि बचाव की कमजोरी पर, लेकिन उच्च न्यायालय ने जिस बात को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है कि वादी का प्रकरण विशेष तौर पर यह है कि उसने प्रतिवादी को लाइसेंसधारी के रूप में मुकदमे की भूमि का अनुमेय उपयोग करने की अनुमति दी थी और 1 जून, 1963 से शुरू होने वाली दो साल की अवधि के लिए उस पर अस्थायी संरचना बनाने की अनुमति दी थी और लाइसेंस पर कार्य करने

वाले प्रतिवादी ने उस पर एक अस्थायी संरचना खड़ी की थी, वाद भूमि और समझौते के विपरीत दो वर्ष की समाप्ति के बाद वाद भूमि का कब्जा वापस देने से इंकार कर दिया था। वादी की इस दलील को समग्र रूप से लिया जाना था और इसके एक हिस्से को स्वीकार करके प्रतिवादी को राहत देने के उद्देश्य से इसे विच्छेदित नहीं किया जा सकता था। वादी की याचिका पर, समग्र रूप से विचार करने पर, लाइसेंस की अपरिवर्तनीयता का प्रश्न बिल्कुल नहीं उठ सकता क्योंकि सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 (बी) में निहित सिद्धांतों पर राहत देने के लिए, एक लाइसेंस अप्रतिसंहरणीय हो जाता है बशर्ते कि निम्नलिखित तीन शर्तें पूरी होती हों:-

- (1) कि अधिभोगी लाइसेंसधारी होना चाहिए,
- (2) कि उसे लाइसेंस पर कार्रवाई करनी चाहिए थी,
- (3) और स्थायी चरित्र का कार्य निष्पादित किया और कार्य के निष्पादन के लिए व्यय वहन किया।

उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने एडवोकेट कमिश्नर की रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए कहा कि मुकदमे की संपत्ति पर प्रतिवादी द्वारा बनाई गई संरचना एक स्थायी प्रकृति की थी। ऐसा करते हुए इसने न केवल रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सबूतों को नजरअंदाज कर दिया, बल्कि यह भी कि एडवोकेट कमिश्नर की रिपोर्ट 1975 में प्रस्तुत की गई थी, जबकि

निर्माण बढ़ाने के सवाल पर लाइसेंस की अवधि यानी 1.6.1963 से 1.6.1965 की अवधि के संबंध में विचार किया जाना था। वादी-अपीलकर्ता के अनुसार साइट पर केवल अस्थायी निर्माण की अनुमति दी गई थी और जब अपीलकर्ता द्वारा लाइसेंसधारक से भौतिक कब्जा खाली करने और सौंपने का अनुरोध किया गया था, तो विपक्षी द्वारा कोई प्रतिक्रिया नहीं दी गई। जैसा कि ऊपर देखा गया है, उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की है कि लाइसेंसधारी द्वारा स्थायी संरचना के निर्माण के कारण लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है, यह मामला विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय में उठाए गए बचाव के साथ पूरी तरह से असंगत है। प्रतिवादी संख्या 1 इस तरह की याचिका को द्वितीय अपील में पहली बार उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील के चरण में उठाए जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी। हालाँकि उच्च न्यायालय ने नीचे की दो अदालतों द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया है, इसलिए हम केवल द्वितीय अपील की पोषणीयता के आधार पर फैसला देना उचित नहीं पाते बल्कि अपील में फैसले के गुणावगुण पर भी जांच करना उचित पाते हैं।

उच्च न्यायालय में अपीलकर्ता-प्रतिवादी (यहां प्रतिवादी) के विद्वान वकील द्वारा की गई मुख्य दलील यह थी कि उसे परिसर खाली करने के लिए नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि उसे दिया गया लाइसेंस सुखाधिकार

अधिनियम की धारा 60 (बी) के तहत अप्रतिसंहरणीय हो गया था और लाइसेंस पर कार्य करने वाले अपीलकर्ता ने धन खर्च करके मुकदमे की भूमि पर स्थायी प्रकृति की संरचनाओं का निर्माण किया था, जिससे उक्त धारा की सभी आर्हताएं पूरी हो गई थी। वादी-प्रतिवादी (यहाँ अपीलकर्ताओं) की प्रारंभिक आपत्ति थी कि लाइसेंस की अप्रतिसंहरणीयता के संबंध में कोई नई याचिका उच्च न्यायालय में पहली बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जबकि ऐसा आधार न तो अभिवचनों में न ही बहस के दौरान विचारण न्यायालय के समक्ष या प्रथम अपीलीय न्यायालय में लिया गया था और न ही इस नई याचिका के समर्थन में किसी सबूत को अस्वीकार किया गया था। यह निर्धारित किया गया:-

"श्री गोस्वामी द्वारा दी गई दलील की जांच करने से पहले, यह कहना उचित होगा कि उपरोक्त बिंदु पर उस तरह से आग्रह नहीं किया गया था जिस तरह से इस न्यायालय में विचारण न्यायालय के समक्ष या विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष किया गया है। श्री बरूवा ने प्रतिवादी की ओर से आपत्ति जताई कि इस नई याचिका को इस अदालत में पहली बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस संबंध में, उन्होंने सी. अय्यप्पन बनाम धर्मोदयम कंपनी,

एआईआर (1966) का हवाला दिया। एससी 1017, जिसके पैरा 8 में मामले के इस पहलू को निपटा गया है, उस मामले में भी एक दलील दी गई थी कि न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता को अधिनियम की धारा 60 (बी) द्वारा संरक्षित किया गया था। यह दलील उठाए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि लाइसेंस या इसकी अप्रतिसंहरणीयता के संबंध में विचारण न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई तर्क या बचाव नहीं उठाया गया था, इस न्यायालय में जो बचाव लिया गया वह पूरी तरह से पूर्व से भिन्न था। यह निर्णय अपीलकर्ता को धारा 60 (बी) के तहत सुरक्षा की दलील लेने से नहीं रोक सकता है क्योंकि वर्तमान मामले में लाइसेंस देना और संरचना को खड़ा करना वादी का स्वयं का मामला है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विचारण न्यायालय में प्रतिवादी द्वारा लिया गया बचाव वह नहीं था जो श्री गोस्वामी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष लिया गया था। लेकिन इतना पर्याप्त नहीं था कि यह मुकदमे की जमीन खरीदने के समझौते से संबंधित था जिसके बाद प्रतिवादी मुकदमे की जमीन पर कब्जा करने आया था। मेरे विचार में अपीलकर्ता को श्री गोस्वामी द्वारा

आग्रह किए गए मुद्दे को उठाने की अनुमति नहीं देना, क्योंकि यह कानून का प्रश्न है और वादी की दलील पर आधारित है," उचित नहीं है।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि सुखाधिकार अधिनियम का असम राज्य पर लागू नहीं है, लेकिन यह राय दी कि प्रतिवादी को अधिनियम की धारा 60 (बी) द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए था, जो जगत सिंह बनाम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, एआईआर (1940) लाहौर, 409 में टेक चंद, न्यायाधीश द्वारा, इस मामले में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। जिसमें मथुरी बनाम भोला नाथ, एआईआर (1934) ऑल 517 में सुलेमान, सीजे की राय पर भरोसा किया था।

हमारी राय में विद्वान एकल न्यायाधीश का दृष्टिकोण गलत था। एक बार जब यह स्पष्ट था कि सुखाधिकार अधिनियम असम राज्य पर लागू नहीं होता है, तो अधिनियम की धारा 60 (बी) को लागू करने के लिए आधार ढूंढने का प्रश्न ही नहीं उठता। निःसंदेह, न्याय, समता और अच्छे विवेक के सिद्धांत, जिस पर सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60(बी) टिकी हुई है, किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू हो सकते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जहां सुखाधिकार

अधिनियम लागू नहीं होता है लागू करें, सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60(बी) के प्रावधान अभी भी प्रचालित हैं। चूंकि, विधायिका का इरादा इस अधिनियम को असम में लागू करने का नहीं था, तो विद्वान एकल न्यायाधीश यह कहकर उस इरादे को विफल नहीं कर सकते थे कि वर्तमान मामले में प्रतिवादी को अधिनियम की धारा 60 (बी) द्वारा संरक्षित किया गया था। ऐसे किसी अधिनियम के प्रावधानों को जिसे किसी राज्य में विधायिका द्वारा लागू नहीं किए गए ऐसे अधिनियम को न्यायिक आदेश द्वारा विस्तारित करना स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह उच्च न्यायालय द्वारा कानून बनाने के समान होगा, जिसकी शक्ति न्यायपालिका में निहित नहीं है।

यहां तक कि न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों की सहायता लेकर प्रतिवादी को राहत देना, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर स्वीकार्य नहीं था। यह याद रखना चाहिए कि समानता की अदालत को कानूनी धोखाधड़ी के अपराध को रोकने के लिए ऐसा कार्य करना चाहिए। उससे अपेक्षा की जाती है कि जहां तक यह उसकी शक्ति में है, वह ईमानदारी और सद्भावना को बढ़ावा देकर न्याय करेगी। साम्यता के आधार पर राहत चाहने वाले पक्ष को स्वच्छ हाथों से न्यायालय में आना चाहिए। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी ने इस बात से इन्कार किया कि वह अपीलकर्ता का लाइसेंसधारी था और उसे दो साल की अवधि के लिए वाद

भूमि पर अस्थायी संरचनाएं खड़ी करने की अनुमति दी गई थी। उसने संभावित खरीदार के रूप में अपनी क्षमता में वाद की भूमि पर कब्जा होने का दावा करते हुए बेचने के मौखिक समझौते के आधार पर एक संभावित खरीदार के रूप में वाद भूमि पर स्वामित्व स्थापित किया। उच्च न्यायालय सहित तीनों न्यायालयों ने प्रतिवादी की याचिका को प्रतिवादी द्वारा दायर विनिर्दिष्ट अनुतोष के मुकदमे में झूठा पाया। विशेष अनुमति याचिका में, दिये गये निर्णय एवं डिक्री को भी इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया। तब प्रतिवादी को साम्या के आधार पर किसी भी राहत का हकदार कैसे पाया जा सकता है, जब उसका बचाव झूठ पर आधारित था? हमने यहां प्रतिवादी के आचरण पर ध्यान दिया कि उसके द्वारा अपीलार्थी के स्वामित्व को अस्वीकार करने की एक दलील पेश की, जिसे सभी अदालतों ने एक साथ झूठा पाया है। अतः निश्चित ही वह स्वच्छ हार्थों से न्यायालय में नहीं आया। इस प्रकार, भले ही यह तर्क के लिए मान लिया जाए कि सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 (बी) के प्रावधानों को अंतर्निहित न्याय, समानता और सद्विवेक के सिद्धांतों के आधार पर असम राज्य के किसी दिए गए मामले में आकर्षित किया जा सकता है, जहां सुखाधिकार अधिनियम का विस्तार नहीं किया गया था, पर प्रतिवादी के आचरण ने उसे समानता, न्याय और सद्विवेक के आधार पर किसी भी राहत से वंचित कर दिया। जगत सिंह और अन्य बनाम जिला बोर्ड (सुप्रा) के मामले में लाहौर उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर उच्च न्यायालय की



निर्भरता गलत है, वास्तव में पंजाब प्रांत में, सुखाधिकार अधिनियम लागू नहीं था और न्यायालय के लिए बोलते हुए टेकचंद, न्यायाधीश ने लेटर्स पेटेंट अपील पर निर्णय लेने के लिए समानता, न्याय और अच्छे विवेक के सामान्य कानून सिद्धांत का आह्वान किया, जिसे विद्वान न्यायाधीश ने काफी हद तक सुखाधिकार अधिनियम की धारा 60 में निहित के समान पाया। तथ्यों पर यह पाया गया कि विवादित भूमि का उपयोग वास्तव में जिला बोर्ड द्वारा उसी उद्देश्य के लिए किया जा रहा था जिसके लिए उसे लाइसेंस पर दिया गया था। यह भी तथ्यों से स्थापित हुआ था कि 10 साल से अधिक समय पहले, प्रतिवादी ने काफी लागत पर एक चारदीवारी और एक पक्का गेट बनवाया था, क्योंकि वे कार्य स्थायी प्रकृति के थे। इन परिस्थितियों में श्री टेकचंद, न्यायाधीश ने माना कि भले ही सुखाधिकार अधिनियम पंजाब प्रांत पर लागू नहीं था, यह अपीलकर्ता के विवेक पर नहीं था कि वह अपने विकल्प पर लाइसेंस रद्द कर सके और भूमि को स्थायी निर्माण के समय की स्थिति में ला सके। प्रतिवादी द्वारा न्याय, समानता और सद्विवेक के सिद्धांतों पर अपीलकर्ता द्वारा दिए गए लाइसेंस पर कार्य करके स्थायी संरचना का निर्माण किया गया था। इस प्रकार, जगत सिंह के मामले (सुप्रा) की तथ्य एवं परिस्थितियां पूरी तरह से भिन्न थी। लाइसेंसधारी ने स्थायी निर्माण के लिए व्यय करने के बाद लाइसेंस पर कार्रवाई करते हुए एक स्थायी निर्माण किया था और यही कारण था कि न्यायालय ने माना कि लाइसेंस को लाइसेंसकर्ता की स्वेच्छा

पर रद्द नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी ने स्पष्ट रूप से अपीलकर्ता का लाइसेंसधारी होने से या उसने लाइसेंस पर कोई निर्माण कार्य किया होने से इन्कार कर दिया है। इस प्रकार, वह द्वितीय अपील में किसी भी राहत का हकदार नहीं था। इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय का निर्णय बरकरार नहीं रखा जा सकता। यह अपील सफल हुई और स्वीकार की गई। उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को बहाल किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

वी.एस.एस

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री वरूण तलवार (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य हो।